आदिवासी अधिकार हनन की दूब: पाँव तले की दूब

डॉ. दीपक रामा तुपे,
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
विवेकानंद कॉलेज, कोल्हापुर (स्वायत्त)
मोबाइल: 8805282610
ई-मेल:dipaktupe1980@gmail.com

सारांश

सुप्रसिद्ध रचनाकार संजीव का व्यक्तित्व और कृतित्व में सामाजिक, राजनीतिक और संघर्ष की सशक्त मिसाल है। 'पाँवों तले की दूब' संजीव का उपन्यास प्रसिद्ध उपन्यास है जो सदियों से बुनियादी सुविधाओं से वंचित आदिवासी समाज के शोषण की दासतां बयां करता है। उपन्यास झारखंड परिसर के आदिवासियों का शोषण, उनके साथ हो रहा षडयंत्र उजागर करता है। प्राकृतिक संसाधनों संपन्न आदिवासी समाज को जब उनको उनकी जमीन-जंगल से बेदखल किया जाता है, उनके अधिकार छीन लेता है, तब वे जंगल को आग लगा देते हैं। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए हर वक्त प्रयास करता है, संघर्ष करता है, आंदोलन छेड़ता है। भूख, गरीबी, बदहाली, अशिक्षा, पलायन, बेरोजगारी, जल, जमीन, जंगल, पानी, हवा प्रदूषण, खनन, बिजली, स्वास्थ्य आदि समस्याओं से पीड़ित आदिवासी समाज आजादी के सत्तर साल बाद भी अपनी बुनियादी समस्याओं से जूझ रहा है। लेखक संजीव का 'पाँवों तले की दूब' उपन्यास शोषण की चिकी में पिसते आदिवासी समाज को उनके अधिकार दिलाने और वह पाँव तले की दूब बनकर जीने वाले समाज को स्वस्थ जीवन दिलाने हेतु प्रयासरत है।

बीज शब्द : आदिवासी, आदिवासी अधिकार, जंगल, आदिवासी प्रथा-परंपरा, राजनीतिक षडयंत्र आदि।

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार संजीव का व्यक्तित्व और कृतित्व में सामाजिक, राजनीतिक और संघर्षशील जीवन की एकता नजर आती है। किसान परिवार में जन्मे संजीव कुल्टी में गरीबी और संघर्ष में बीता। वे विज्ञान के छात्र थे मगर उनका रूझान हिंदी साहित्य लेखन की ओर ज्यादा रहा। उन्हें अंग्रेजी, बंगाली, उर्दू, भोजपुरी, अवधि और आदिवासी जनजातियों की बोलियों का ज्ञान था। पत्नी सुख अधिक लाभदायी नहीं रहा और न रचनाओं के लिए उपयोगी। भगतसिंह और मॉडम क्यूरी उनके प्रेरणास्रोत रहे हैं। उनका समग्र जीवन कठिनाइयों में बीता हुआ नजर आता है। मेहनती, ईमानदार, निष्ठावान, स्वाभिमानी, संवेदनशील, जिज्ञासू, अध्ययनशील, अतिथ्यशील और भावुक व्यक्तित्व के धनी संजीव ययावरी प्रवृत्ति के और जनसाधारण से जुड़े रचनाकार है। नक्सलवादी और माक्सवादी विचारों का प्रभाव भी उन पर नजर आता है। उनका कथा-साहित्य मजदूर, नारी, दलित और आदिवासी समाज के शोषण की यथार्थ गाथा चित्रित करता है। उहोंने समाजिक वर्ग भेद और स्त्री-पुरुष असमानता मिटाने का प्रधान कार्य किया है।

लेखक संजीव का 'पाँवों तले की दूब' उपन्यास वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर से सन् 2005 में प्रकाशित है, जो आदिवासी शोषण की गाथा चित्रि त की है। प्रस्तुत उपन्यास में सदियों से रौंदी दूब समान आदिवासी समाज के शोषण एवं आक्रोशभरी दासतां है। झारखंड परिसर के आदिवासियों का व्यवस्था द्वारा दीर्घकाल से हो रहा शोषण, आदिवासी के हक-अधिकार एवं अलग झारखंड की मांगों का आंदोलन और बिचौलियों की तिकड़में आदि का बेबाक बयान यह उपन्यास प्रस्तुत करता है। आदिवासी समाज के उन्नयन की कामना करनेवाला अफसर सदीप्त ऊर्फ सुदामा प्रसाद है, जो एक आंदोलनधर्मी लेखक है। नायक सुदीप्त की आशा-आकांक्षा, स्वीकार-अस्वीकार, आस्था-अनास्था, टूटन-घुटन, द्वंद्व-अंतरद्वंद्व, तान-तणाव, विद्रोह-संघर्ष उपन्यास के पन्ने-पन्ने पर व्याप्त है। वह डोकरी स्थित नेशनल थर्मल पॉवर कॉरपोरेशन (ताप विद्युत प्रतिष्ठान) में इंजीनियर है। स्थानीय लोग उसे बीजली साहब के रूप में जानते हैं। संपन्न परिवार में जन्मे सुदीप्त की माँ बचपन में ही चल बसी। उसे भाई-बहन कोई नहीं था। मजदूर, हलवाहों, चरवाहों और मजुरों के अत्याचार से परेशान सुदीप्त जब मजूरों की पिटाई करते पिता का हाथ पकड़ लेता है तब पिता मजदूरों के साथ बाँधकर पिटते हैं। तब वह बाल-विवाहिता पत्नी को भी मुक्त कर देता है और वह भी घर छोड़ देता है हमेशा के लिए। सुदीप्त में प्रतिभा कूट-कूटकर भरी हुई नजर आती है; जिसमें दृढ़ता का आभाव पाया जाता है। मामी के पैसों से वह खड़गपुर से बी. ई. किया मगर वह अपनी पढ़ाई का उपयोग गौण एवं दलितों की मुक्ति के लिए करता है। उसके लिए नौकरी गौण है और आंदोलन मुख्य।

वस्तुत: उपन्यास की शुरुआत पत्रकार समीर द्वारा सुदीप्त की तलाश के साथ होती है। इसमें उसे सुदीप्त की आत्मकथा और उससे संबंधित अपनी स्मृतियों के जरिए समीर कथानक को आगे बताता है। उपन्यास की कथा आरंभ में समीर खुद कहता है, जो एक 'स्वदेश' पत्रिका का संपादक है। आगे चलकर सुदीप्त की आत्मकथा के माध्यम से कथानक को आगे बढ़ाया जाता है।

दोनों की कथाएँ इतनी घुलमिल जाती है कि उसे एक-दूसरे से अलग करना भी संभव नहीं है। यह कथाएँ एक-दूसरे को अनुपूरक होती है और पैंतरेवार भी। जहाँ-जहाँ सुदीप्त बातों को छिपाने की कोशिश करता है, तोड़ता-मरोड़ता है वहाँ-वहाँ समीर खुद ही आलोचना के माध्यम से कथा को आगे बढ़ा देता है। गीतकार सुदीप्त आदिवासी आंदोलन का सक्रिय कार्यकर्ता था। समीर आदिवासी नेता हंसदा के प्रयोग से उपजे साहस और हिम्मत को सुदीप्त में देखता है, मगर संयोग से सुदीप्त को उसी संस्थान यानी स्थानीय नेशनल थर्मल पॉवर कॉरपोरेशन में इंजीनियर की नौकरी मिल जाती है। इसके लिए भूमि अधिग्रहण की माँग को लेकर विस्थापितों के आंदोलन किया गया; जिसमें वह शामिल था। नौकरी हासिल करने के बावजूद वह नौकरी से अलग नहीं हो पाया। वह आदिवासियों को यह अवगत कराना चाहता था कि उसकी मुक्ति की लड़ाई अन्य गरीब एवं शोषित लड़कों से अलग नहीं है। सुदीप्त आदिवासीयों का डर अपने शब्दों में बयां करता है-"पर अन्याय देखो आदिवासियों को जिनकी जमीन पर यह कारखाने लग रहे हैं, उन्हें टोटली डिप्राइव किया जा रहा है। इस संपत्ति में उनकी भागीदारी तो खत्म की हो जा रही है, उन्हें जमीन से भी बेदखल किया जा रहा है। मुआवजा भी अफसरों के पेट में। वर्षों पहले यहाँ टोकरी और मकरा नाम के दो गाँव हुआ करते थे। किसी ने फूँक मारकर उड़ा दिया था उन्हें। कहाँ गए वे विस्थापित लोग।" जिनकी जमीन पर कारखाने लगे हैं अफसर उन आदिवासियों को मुआवजा नहीं देते जबकि ऊपर से उन्हें उनकी जमीन से बेदखल किया जाता है।

सुदीप्प को एक ऐसी विवशता आ जाती है कि वह अज्ञातवास में चला जाता है। वह मेझिया गाँव में बहुत-कुछ सुधार करता रहता है, मगर वहाँ की पुलिस एवं अफसर आदिवासी जन-जागृति के खिलाफ है। वहाँ की राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियाँ हैं, जो केवल दिखावामात्र करती है। जनता को गुमराह कर देती है। ऐसी स्थिति में सुदीप्त का प्रयास सबसे अलग दिखाई देता है। वह प्लॉट के आसपास के गाँवों का अध्ययन करता है और प्रदूषण रोकने, बिजली आपूर्ति करने, सड़के बनाने, स्थानीय लोगों को रोजगार दिलाने, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सफाई की समस्या से निजात पाने का सुझाव सबके सामने रखता है। मगर तत्काल उसे थर्मल पॉवर प्लॉट की आधुनिक तकनीक का अध्ययन करने जर्मनी भेज दिया जाता है।

जर्मनी से वापस आते ही सुदीप्त को कुछ बुरी खबरे मिल जाती है। आंदोलन का जनप्रतिनिधि फिलीप आग में झुलकर मर जाता है और आंदोलन का नेतृत्व लंपट और गैरकानूनी धंधे करने वालों के हाथों चला जाता है। इसके विरोध में फिलीप आवाज उठाता है। औद्योगिकीकरण के कारण आदिवासीयों के जंगल, खेत, जल, संस्कृति प्रदूषित हो रहे हैं, जिसके कारण आदिवासी स्त्री-पुरुष लुले-लंगडे एवं लकवे की बीमारी का शिकार हो जाते हैं। सुदीप्त के अनुसार-"कई लड़के-लड़कियाँ और बूढ़े-लकवे के मारे से दिख रहे हैं और उस पर स्याह चहरों की भयावनी उजली आँखें भरी दोहरी में मुझे प्रेतों और डायनों का साया मँडराने लगा।" सरकार, राजनेता और अफसर की मिलीभगत से लगाए गए कारखानों से आदिवासीयों को प्रदूषण का सामना करना पड़ रहा है। घातक रसायनों का उत्सर्जन उन्हें अपाहिज बना देता है। कल-कारखाने आदिवासी समाज के लिए खतरा साबित हो रहा है। हालाँकि आदिवासी जमीन एवं जंगल के मालिक है। यह संपत्ति उनकी होने के बावजूद आदिवासी लोग कंगाल बन रहे हैं। जब फिलीप इस व्यवस्था का विरोध करने हेतु शालीबानी के जंगल को आग देता है और सुदीप्त उसे रोकने का प्रयास करता है तब फिलीप कहता है-"यह धरती, हमारी धरती सोना उगलती है और इस सोने की धरती की हम कंगाल संतान है।" फिलीप का उक्त कथन आदिवासी समाज का वास्तव बयां करता है। आदिवासी समाज का वास्तव इतना दर्दनाक है कि उन्हें रोटी, कपड़ा और मकान जैसे बुनियादी सुविधा भी नहीं मिलती। इस संदर्भ में मेझिया को देखकर समीर कहता है-"वे इतने गरीब थे कि कपड़े के नाम पर चिथड़े का कच्चा पहने हुए थे, पुट्टे तक खुले हुए, औरतों को जैसे-जैसे बदन ठकने को मिलता है कपड़ा। बच्चे कंगाल जैसे।" इससे साफ जाहीर होता है कि आदिवासी समाज कंगाल हो गया है न उन्हें तन ढँकने को कपड़ा मिल रहा है और न रहने के लिए घर और न खाने के लिए अनाज। आजीविका चलाने के लिए बुनियादी जरूरतों की पूर्ति करना भी आदिवासी समाज को आज संभव नहीं हो रहा है।

आदिवासी समाज का खुला स्वभाव भी उनके शोषण के लिए जिम्मेदार दिखाई देता है। जंगल के सिपाही भी आदिवासी स्त्रियों का लैंगिक शोषण करते हैं। सरकारी अफसर वन विभाग की पुलिस में माझो सुदीप्त को अपने गाँव की स्त्रियों पर हो रहे अत्याचारों के संदर्भ में अवगत कराता है-"जाने तो सिरिफ जंगल का सिपाही ही नहीं अब तो भरदीवाल सुक्खु सिंह का आदमी भी आता है और गाँव की लड़की लोगों को फुसलाता है।" उक्त कथन आदिवासी नारी के शोषण की दासतां अभिव्यक्त करता है। झारखंड मुक्ति आंदोलन और स्वतंत्र राज्य निर्माण में आंदोलकारी असली शत्रु को पहचान नहीं पाते। इसी वजह से आंदोलकारी भ्रष्ट अफसरों, (आदिवासी और दिकू दोनों) ठेकेदारों, सप्लायरों को निशाना नहीं बनाते। वस्तुत: आदिवासी नारी जीवन को डायन प्रथा यह एक अभिशाप माना जाता है। डायन के नाम पर ओझा किसी भी स्त्री का आर्थिक शोषण करते हैं। बाँझ औरत को गाँव में बीमारी फैलाने और पशुओं की मृत्यु का जिम्मेदार ठहराकर डायन करार दिया जाता है। प्रस्तुत उपन्यास का धर्मगुरु ओझा गाँव की औरत मंगरी को डायन करार देता है। पत्थर से मारकर मंगरी की हत्या कर दी जाती है। पंडित इस घटना की सच्चाई को सुदीप्त को

अवगत करा देता है-"ओझा ने ही इस औरत को डायन कहकर उकसाया था तीन सौ रुपये और एक बकरे की माँग कर रहा था।" दुर्गम स्थानों का निवास, अर्थाभाव, अंधविश्वास, अज्ञान के कारण आदिवासी समाज का विभिन्न प्रथा-परंपरा के नाम पर धर्मगुरु उनका शोषण करते हैं। जब सुदीप्त एक बार डायन की हत्या की छानबीन करने मेझिया जाते हैं तब किस्कू ने अपनी माँ के साथ अवैध संबंध का आरोप लगाते हुए कनपटी पर पत्थर मारकर घायल कर देता है। तब से वह यह तय कर देता है कि किस्कू को वह सभ्य इन्सान बनाएगा, मगर वह उसमें वह असफल हो जाता है। आंदोलनकारियों का घेराव फाँस बनकर उसके गले के इर्द-गिर्द अंदर-बाहर कसा रहता है। यह घेराव लफ्फाज और टुच्ची साहित्यिक सभाओं, मीडियाकार, साहित्यकार, सोडावाटरी भाषणों से भरी राजनीतिक सभाओं, गेंडे की खाल सी अफसरी कल्ट, साँपों से विषैले-चिकने-लिजलिजे पर चौकन्ने ठेकेदार और भ्रष्ट यूनियन नेताओं, थोड़े-थोड़े तात्कालिक लाभों से बहकती वंचित जनों की मासिकताओं का है। इसमें हंसदा, मनीष, विजय, फिलीप, सिंन्हा साहब, उज्ज्वल राय, कालिचरण किस्कू, गोपाल, शीला जैसे अविस्मरणीय पात्र हैं, जो सुदीप्त को पांवों तले दूब बनने के लिए विवश कर देते हैं। सुदीप्त भी आखिरकार व्यवस्था और समाज से हारकर आत्महत्या कर आदिवासी की तरह पाँवों तले की दूब बन जाता है। "वर्षों से मैं एक ही कहानी लिख रहा था, मगर जब कहानी जीने और लिखने का फर्क किए जाए तो उसकी चुनौती सामने आती है। मुझे स्वीकारने में शर्म नहीं की मैं एक चरित्र तक खड़ा न कर सका। न कालीचरण किस्कू, न गोपाल, हँसदा, सुखमय बाबू, मनीष, फिलिप शीला भी नहीं।" स्पष्ट है कि सुदीप्त न लेखक बन गया और न सामाजिक परिवर्तन कर सका। अंतत: वह अपनी नौकरी का इस्तीफा देता है। शीला प्रसंग की विद्रूपता, साथियों द्वारा की गई उपेक्षा, धमकियाँ, गालियों से त्रस्त, असाध्य मानसिक व्याधि से ग्रस्त सुदीप्त की पाँवों तले की ईंट खिसक जाती है और वह चेतन से अवचेतन तक छींजता हुआ अहरह भटकता शून्य में विलिन हो जाता है। उसकी जिंदगी चोरों की ओर पानी होने के बावजूद उसकी जिंदगी एक जलता जहाज होकर रह गई। वह अपनों के लिए संकल्पित थी मगर वह अपने को सँभल पाई, न अपनों को। वह न कभी सफल लेखक बनता है और न सफल अफसर।

निष्कर्ष:

कहा जा सकता है कि 'पाँवों तले की दूब' शीर्षक अपने आप में एक उपन्यास की पूरी कहानी बयां करने का प्रयास करता है। पाँवों तले की दूब को कितना भी खाद-पानी दिया जाए, मगर वह अपना विस्तार नहीं कर पाती और कुपोषित ही रहती है। लोग अपनी सुविधा की खातिर उसका उपयोग करते हैं और उसे कुचलता रहता है। प्राकृतिक संसाधनों संपन्न आदिवासी समाज का विकास नहीं हो पाता क्योंकि वे उस दूब के समान है जिसे हमेशा पैरों तले रौंदा जाता है। वह अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर पाता जिसके लिए वह हमेशा संघर्षशील रहता है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक संजीव ने भूख, गरीबी, बदहाली, अशिक्षा, पलायन, बेरोजगारी, जल, जमीन, जंगल, पानी, हवा प्रदूषण, खनन, बिजली, स्वास्थ्य आदि समस्याओं से पीड़ित आदिवासी जन हमेशा शोषण की चिकी में पिसते रहते हैं जिसे न ऊपर आने दिया जाता है न वह खुद ऊपर आती है। वह वैसी ही रहती है जैसे पाँवों तले की दूब!

संदर्भ ग्रंथ

1. संजीव - पाँव तले की दूब, वाग्देवी प्रकाशन, विनायक शिखर, पॉलिटेक्नीक कॉलेज के पास, बीकानेर, 334003, पुनर्मुद्रण संस्करण: 2016, पृ.-28)
2. वही, पृष्ठ-21
3. वही, पृष्ठ-21
4. वही, पृष्ठ-15
5. वही, पृष्ठ-77
6. वही, पृष्ठ-33